संपादकीय

मूर्त हिया बनाम अमूर्त हिय

दुनिया भर में हृदय से जुड़े रोगों के बढ़ते मामलों को देखते हुए जागरूकता फैलाने के निमित्त सन् 2000 से 'विश्व हृदय दिवस' सितंबर के अंतिम रविवार को मनाने की शुरुआत हुई, हालाँकि बाद में सन् 2014 से यह 29 सितंबर को मनाया जाने लगा। विश्व में होने वाली मौतों में 25-30 प्रतिशत मौतें हृदय रोग के कारण हो रही हैं, यानी हर तीसरे-चौथे इंसान की मृत्यु का कारण हृदयाघात है। पौने दो करोड़ लोग हर साल केवल दिल की बीमारी से मरते हैं। यह रोग तीव्र-तीक्ष्ण मृत्यु का कारक है, संभलने का मौका नहीं देता। आधे लोग अस्पताल पहुँचने से पहले ही दम तोड़ देते हैं। भागमभाग की जिंदगी अथवा एकदम निष्क्रियता की वजह से अंतस्थ हृदय की ओर कम ध्यान दे पाते हैं। ख्याल तभी करते हैं, जब तकलीफ-दर्द बढ़ने लगता है; फलतः अत्यधिक थकान, तनाव, चिंता, मोटापा के साथ वजन में अप्रत्याशित वृद्धि होती है; उच्च रक्तचाप, मधुमेह, गैस, गुर्दा रोग घेर लेता है। छाती में दर्द, साँस की तकलीफ, उल्टी, घबराहट, अपच, पसीना आने के सूक्ष्म-स्थूल लक्षण दिखने लगते हैं। रक्त संचार ठप्प होने या दिल के कुछ भागों में बाधा उपस्थित होने पर कोशिकाएँ मरने लगती हैं, फिर दिल के दौरे पड़ते हैं। दिल के हिस्से में थक्का बनकर खून रुक सकता है, कोशिकाएँ फट सकती हैं। यही स्थिति मस्तिष्क में भी बन सकती है, मस्तिष्क में आघात यानी ब्रेन स्ट्रोक हो सकता है। अव्यवस्थित जीवन शैली और असंतुलित खानपान के कारण किसी भी उम्र में आदमी इसका शिकार बनता है। प्रदूषित वातावरण भी इसका एक कारक है। वसायुक्त भोजन से कोलेस्ट्रॉल का बढ़ना अंततः हृदयरोग को जन्म देता है। आधुनिक युग में मोबाइल, इंटरनेट, लैपटॉप, धूम्रपान आदि का जरूरत से ज्यादा नशा चढ़ जाने के कारण भी इसकी आशंका बढ गई है। नमक व वसा कम खाने, नियमित टहलने व व्यायाम करने, फल-सब्जी का आहार व भरपूर नींद लेने, योग व ध्यान से काफी हद तक प्रतिरोध होता है।

शारीरिक अवस्थिति वाले कार्यकलाप के अलावे हृदय का अमूर्त रूप-कार्य भी है, जो आत्मिक भावना, आध्यात्मिक चेतना और मन के संवेग से जुड़ा है। बेशक हृदय अंग है, पर अंगमात्र नहीं है; इसलिए जितना दिखता है, उतना नहीं भी दिखता। हृदय और मस्तिष्क प्राणिमात्र की प्राणवत्ता के प्रमाण हैं। इनके बिना अथवा क्षत-विक्षत होने की दशा में पल भर भी जीना संभव नहीं। हृदय और मस्तिष्क की क्षति होने की मात्रा के हिसाब से हार्दिक क्षमता और मस्तिष्क का सामर्थ्य प्रभावित होता है, चेतन-अवचेतन की कड़ी अवरुद्ध होती है। योग के आठ सोपानों के अंतर्गत 'प्राणायाम' के तीन तरीकों में साँस छोड़ने यानी 'रेचक', खींचने यानी 'पूरक' और रोकने यानी 'कुंभक' का संबंध हृदय से है। 'प्रत्याहार' में आत्माधीन होकर इच्छित कार्य-भाव में लीन हुआ जाता है। किसी इष्ट विशेष पर मन को पूर्णतः केंद्रित करने की क्रिया 'धारणा' है। 'ध्यान' द्वारा अंतरंग शरीर की नाभि, हृदय या कंठ में मन को स्थित किया जाता है, जहाँ भाव-विचार शून्य हो जाते हैं। 'समाधि' के अंतर्गत अंतर्धान की गई वस्तु प्राप्त होती है। इन सब क्रियाओं का संबंध कहीं-न-कहीं दृश्य-अदृश्य हृदय से है। स्थिरचित्त अवस्था में ही अष्टांग योग का प्रकर्ष होता है, खासकर उनका, जो उत्तरार्द्ध के चरण हैं। योग शरीर को नियंत्रित करने, मन-मस्तिष्क को स्थिर करने और हृदय की भावनाओं को आत्मिक-आध्यात्मिक बनाने का उपक्रम है। वाणी के चार प्रकारों में मुख से निकली बैखरी और कंठ से उद्भूत मध्यमा से आगे पश्यंती हृदय से और परावाणी नाभि से निकलती है। इस प्रकार हृदय वाणी के उत्कृष्ट रूप का उद्भावक भी है; शरीर के एक भाग को दूसरे से ही नहीं, वरन् एक मनुष्य को दूसरे से, एक प्राणी को दूसरे प्राणियों से जोड़ने का योजक है; किसी सहमिलन, सहभागिता, सहयोग, गठजोड़ के लिए भी उसका योग अभीष्ट है।

हृदय और उसका गति-कार्य ही जीवित होने का अंतिम प्रमाण है, जो एक मिनट में 60 से 90 बार, एक दिन में लगभग एक लाख बार धड़क कर पूरे शरीर में रक्त का संचारी आवागमन सुनिश्चित करता है। मस्तिष्क को ऑक्सीजन की सतत आवश्यकता होती है, जिसकी आपूर्ति भी दिल के माध्यम से होती है। यदि यह रुक जाए तो मिनटों में मृत्यु होती है। इस प्रकार दिल की धड़कन प्राणों का स्पंदन है, मन की भावनाओं का आगार है, हर्ष-शोक, प्रेम-घृणा, क्रोध-ममत्व का उद्रेक स्थल है। भावों का आंगिक प्राकट्य बाह्य वातावरण में इनकी लाक्षणिक प्रस्तुति एवं मूर्त उपस्थिति दर्शाता है। मनुष्य या प्राणिमात्र के शरीर में मन की अवस्थिति को लेकर एकराय नहीं है। कोई इसे हिया में तो कुछ इसे ललाट के मध्य स्थित मानते हैं। सही है कि हृदय की तरह मन का कोई आंगिक प्रतिरूप नहीं है। हृदय से यदि अदृश्यता वाला गुण लुप्त हो जाए, तो भी उसका साकार रूप विद्यमान रहता है, किंतु मन की साकार उपस्थिति परिलक्षित नहीं, केवल उसकी निरंकार विचारणा द्रुतमान है। लेकिन सवाल उठता है कि वह कहाँ से चलती-रुकती अथवा नियंत्रित होती है? जाहिर है कि वह हृदय, मस्तिष्क, ललाट की तारतम्य शृंखलाओं की निःसृति है, जिसमें प्रमुखतः भावतत्त्व और गौणतः बुद्धितत्त्व समाविष्ट हैं। इस प्रकार मन केवल भावनाओं की प्रवाह-सरिता नहीं, वरन् संचेतना का अल्प क्षेत्र भी है।

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। इससे आगे कहा गया कि आत्मा बलहीनों को प्राप्त नहीं होती - 'नायं आत्मा बलहीनेन लभ्यः'; अर्थात् मानस और आत्मा, भावना और आत्म विवेक का तेज शरीर की सशक्तता पर निर्भर है, यद्यपि शरीर की शिथिलता में भी यह गतिशील रह सकता है, कुछएक बार सकारात्मक या नकारात्मक रूप से ज्यादा ही

सक्रिय रहता है। शरीर के साथ रहते हुए मन उससे परे भी है। शारीरिक और मानसिक, आत्मिक और आध्यात्मिक सक्षमता के लिए हृदय की सशक्तता अत्यावश्यक है। यह जितना स्थूल शरीर के लिए अनिवार्य है, उतना ही परोक्ष मन, बुद्धि और भावना के लिए भी। इसीलिए जब मन विकृत होता है तो बुद्धि, विवेक व भावना भी कुंठित होती है और फिर काया का होना-न होना विशेष मायने नहीं रखता। शरीर भी अंततः विकृति का शिकार बनता है। इसलिए जिस प्रकार अस्वस्थ शरीर में अमूमन मन स्वस्थ नहीं रह सकता, उसी प्रकार अस्वस्थ मन वाला शरीर स्वस्थ नहीं हो सकता। अस्वस्थ मन शरीर को अस्वस्थ करने का रास्ता ढूँढ़ ही लेता है।

यद्यपि 29 सितंबर को मनाया जाने वाला 'विश्व दिल दिवस' हृदय के आंगिक स्वरूप-रोग पर पूर्णतः केंद्रित करके मनाया जाता है, पर ब्रह्मांडीय मनीषा हृदय की उन गहराइयों को भी जानती और मानती है, जो भावों-भावनाओं का अवधारक है। किसी भाव के बाह्य, पर उत्कर्ष रूप के प्रदर्शित होने में अमूर्त हृदय का संयोजन अनिवार्यतः रहता है, अन्यथा दिखावे की भंगिमा का आधार भी भाव हो सकता है, पर वह स्वांग सदृश है। मन-हृदय की भावना और दैहिक हावभावों में विरोधाभास होने की स्थिति में संशय, दुर्बलता, बिखराव उत्पन्न होता है, लक्ष्य में भटकाव आता है। बिखरी हुई लगन और तन्मयता के अभाव में कोई कार्य नहीं सधता। जहाँ एकदम शुष्क या निष्ठुर कार्य संपन्न होता है, वहाँ उसे हृदयहीनता का नमूना कहा जाता है। माना जाता है कि यदि किसी के पास हृदय होने का सापेक्ष गुण हो, तो वह अनुचित कठोर कार्य कदाचित नहीं कर सकता। मन की चाहना, बुद्धि-विवेक भी चाहे-अनचाहे गलत काम में प्रविष्ट करा सकता है, पर हृदय अपनी उच्चावस्था में कुपथ पर नहीं चलता-चलाता। उसके भाव के बिना तो कोई छोटा, मोटा या एकदम स्थूल कार्य भी संपन्न नहीं होता। सामान्यतः हृदय की भावहीनता मानसिक मरण सदृश है। यह स्थिति तब भी बनती है, जब आदमी शारीरिक रूप से कुछ करने, सोचने-समझने में बिलकुल असमर्थ होता है, यानी न भाव व्यक्त कर सकता है और न भाव परख सकता है। बहरहाल, 'विश्व हृदय दिवस' के अवसर पर दिल की बाहरी परतों और आंतरिक अमूर्त औदात्य के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है।

नई शिक्षा नीति का अनुसंधानात्मक पक्ष

केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के अंतर्गत सबसे पहला बदलाव तो यही है कि शिक्षा के अपने नाम से मंत्रालय का नामकरण होगा। इसे मानव संसाधन विकास मंत्रालय कहा जा रहा था, जबकि 1986 से पूर्व शिक्षा मंत्रालय ही संबोधित करने की परिपाटी थी। मंत्रालय के वेबसाइट पर अभी 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' ही अंकित है, पर त्वरित तौर पर मंत्रियों को 'शिक्षा मंत्री' के रूप में अधिष्ठित कर दिया गया है। राजीव गाँधी सरकार ने 1986 की शिक्षा नीति में आधुनिक विचारणाओं के अंतर्गत पुनर्गठित करके 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' बनाया था, जिसमें शिक्षा, संस्कृति, युवा एवं खेल, महिला एवं बाल विकास विभाग अंतस्थ थे, हालाँकि समय बीतने के साथ इन सबका अलग-अलग मंत्रालय स्थापित होता गया। चाहे महिला एवं बाल विकास का मामला हो या संस्कृति, युवा या खेल का, सबका अपना मंत्रालयी अस्तित्व है। 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' कहे जाने वाले मंत्रालय में व्यावहारिक स्तर पर शिक्षा के अलावे और कुछ नहीं बचा था। राष्ट्रीय स्तर पर खंडीकरण का सिलसिला यहाँ आकर रुक गया, पर राज्यों में शिक्षा के खंड-खंड उपांगों - प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा, प्रौद्योगिकी शिक्षा के अलग-अलग मंत्रालय बने हैं। इस पृथक्करण के मूल में शिक्षा के विकेंद्रित विकास-विस्तार की अपेक्षा ज्यादा-से-ज्यादा मंत्रियों को विभागों में खपाने की मंशा काम करती है। विखंडन की यह प्रक्रिया लगातार चालू है, लेकिन इसे अनुचित जानकर सांसदों-विधायकों की कुल संख्या के अधिकतम पंद्रह प्रतिशत तक ही मंत्री रखने का कानून बनाना पड़ा है। मध्य प्रदेश की नई सरकार में पंद्रह प्रतिशत से अधिक मंत्री बनाए जाने का मामला अदालत में पहुँच चुका है। दिल्ली राज्य में 70 विधायकों का दस प्रतिशत यानी 7 मंत्री नियत हैं, जिनसे बखूबी काम चल रहा है। ध्यान रहे कि शुरू में प्रस्ताव तो दस प्रतिशत पर ही सीमित रखने का था, पर आंतरिक अप्रत्यक्ष दबाव के कारण पंद्रह प्रतिशत पर ले जाया गया। शासनिक-प्रशासनिक इकाइयों का विकेंद्रीकरण लोकतांत्रिक शासन की सफलता की शर्त है, पर कई स्थानों पर ये विकृत होकर लोक और तंत्र के बीच खुद अवरोधक बन गई हैं। वैसे परिवर्तन का एक नियम यह भी है कि जहाँ विलगाव होता है, वहाँ एकसाथ आने की छटपटाहट जनमती है और जहाँ संगता होती है, वहाँ विलगाव की इच्छा पनपती है। अस्तु, शिक्षा विषय पूरी तरह काबिल है कि इसका स्वतंत्र मंत्रालय रखा जाए।

नए नामकरण या 1986 से पूर्व के नाम पर लौटने से कोई शक नहीं कि शिक्षा पर ज्यादा फोकस होगा। प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च शिक्षा पर विशिष्ट रूप में केंद्रित रहते हुए भी सबको एक मजबूत कड़ी में जोड़े रखकर समग्रता में नियमन जरूरी है। नई शिक्षा नीति में विद्यालयी एवं उच्च शिक्षा में निरंतरता-तारतम्यता स्थापित करने पर बल और विषयों के रचनात्मक संयोजन से परस्पर दुर्लघ्य दूरी कम करने की नीतिगत पहल प्रथमदृष्ट्या प्रगतिशील है। सामान्य अथवा पेशेवर शिक्षा प्रदान करने वाले सभी एकल संस्थान 2030 तक समेकित रूप से दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान करने वाले बनाए जाएँगे। शिक्षण और शोध को समान महत्त्व दिया जाएगा, फिर भी कुछ शिक्षण पर तो कुछ शोध पर जोर देने वाले संस्थान

बने रहेंगे। अनुसंधान को प्राथमिकता देना इस शिक्षा नीति का प्रबल पक्ष है। अब तक बड़े पैमाने पर होने वाले अनुसंधान वस्तुतः अनुसंधान होते ही नहीं थे। उनका कोई सामाजिक, शैक्षणिक मूल्य नहीं होता था। इस कमजोर कड़ी को पकड़ने की कोशिश वर्तमान की जरूरत थी। शोध की गुणवत्ता और स्तरीयता को बहाल करने का ख्याल बहुत-कुछ कार्यान्वयन पर निर्भर करेगा, पर फिलहाल दिशा-दृष्टि अनुसंधानोन्मुख लगती है। यही कारण है कि स्नातक स्तर पर भी जो विद्यार्थी शोध में प्रवृत्त होना चाहते हैं, उनके लिए चार वर्षीय स्नातक उपाधि में स्तरीय शोध का अवसर उपलब्ध होगा और उन्हें स्नातकोत्तर डिग्री हासिल किए बगैर पीएच.डी. करने की छूट होगी। स्नातकीय शोध शोध-प्रविधि और प्रक्रिया समझने के साथ व्यावहारिक-प्रायोगिक शोध का मूलाधार नमूना बन सकता है, किंतु जो शोधरहित स्नातक पीएच.डी. करना चाहेंगे, उनके लिए परास्नातक की उपाधि अनिवार्य होगी। इसी कारण एम.फिल. को समाप्त किया गया है। एम.फिल. का पाठ्यक्रम सैद्धांतिक पक्ष को जानने के साथ शोध के लघु रूप को निर्मित कराने का उपक्रम था, जिससे पीएच.डी. का कार्य निःसंदेह आसान बनता था। स्नातक और स्नातकोत्तर का पाँच वर्षीय एकीकृत पाठ्यक्रम विषयकेंद्रीयता की दृष्टि से लाभकारी हो सकता है। चार साला स्नातक वालों के लिए अकेले एक साल का स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम भी है। चार वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम के बीच कोई पढ़ाई छोड़ेगा तो पूर्वपठन व्यर्थ नहीं जाएगा। एक वर्ष की पढ़ाई पूरी करने पर सर्टिफिकेट, दो वर्ष पर डिप्लोमा, तीन वर्ष पर स्नातक और चार वर्ष पर स्नातक प्रोग्राम/आनर्स की उपाधि मिलेगी। कोई चाहे तो समयांतराल के बावजूद स्नातक के अपने बचे वर्षों का अध्ययन बाद में पूरा कर सकता है। पीएच.डी. में शिक्षा, शिक्षण, लेखन में क्रेडिट आधारित पाठ्यक्रम अनिवार्य होगा। इस प्रकार शोधसहित स्नातक और पीएच.डी. के शोध व उससे इतर के क्रेडिट मिलकर बेहतर परिणाम दे सकते हैं। तीन वर्ष के स्नातक करने वाले भी परास्नातक कर सकते हैं, पर उनके लिए स्नातकोत्तर उपाधि दो वर्ष की होगी।

महत्त्वपूर्ण आकांक्षा के अंतर्गत विश्वविद्यालयों के माध्यम से शोध संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए 'राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन' की स्थापना की जाएगी। स्पष्ट है कि शोध का परिक्षेत्र अकादमिक परिधियों में सिमटा रहेगा। डिग्री से संलग्न रखते हुए भी शोध को डिग्री से निकालने की आवश्यकता है। डिग्री से परे शोध एक करियर या मिशन रूप में अनुशासित व स्थापित हो; कुछ लोगों के जीवन का जुनून बने, लक्ष्य बनकर जीविका का माध्यम बने और शैक्षणिक-सामाजिक उन्नयन का आधार बने - यह आवश्यक है। मानविकी, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, वाणिज्य, चिकित्सा, अभियांत्रिकी आदि का एक पूर्वनिर्धारित डाटा तैयार हो, जिसके अनुरूप शोध-कार्य हो, न कि घिसे-पिटे अनावश्यक विषयों पर खानापूर्ति की जाए। इस प्रकार धड़ल्ले से दुहराए जाने वाले शोध पर लगाम लगेगा और हरएक शोध की अहमियत सुनिश्चित होगी। इससे विलग भी व्यक्तिगत रुचि-मेधा वाले उपयोगी शोध के लिए स्थान सुरक्षित रह सकता है। नई शिक्षा नीति के तहत 'भारतीय उच्चतर शिक्षा आयोग' एक विशिष्ट विनियामक सर्वोच्च संस्थान के रूप में गठित होगा। इसके अधीनस्थ चार प्रभावी निकाय होंगे, पर 'भारतीय उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग' जैसा कोई प्रस्ताव न होना निराशाजनक है। भारतीय उच्चतर शिक्षा की दुरावस्था का एक बड़ा कारण विकेंद्रित व मनमानी नियुक्ति प्रणाली है, जिससे प्रथमतः व अंततः सारी उपाधियाँ, परियोजना, शोध, अकादमिक कार्यकलाप जुड़कर अपनी अर्थवत्ता खोते जा रहे हैं। 'राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा' भी बेकार सिद्ध हो रही है। शोध साध्य न होकर येनकेन प्रकारेण डिग्री व नौकरी प्राप्ति के साधन बन गए हैं। नियुक्ति में स्थानांतरण के विकल्प को खत्म कर देना उचित है। महाविद्यालयों में द्विभाषिक पढ़ाई की व्यवस्था होगी। श्रेष्ठ भारतीय विश्वविद्यालयों को विदेश में और विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में अपने परिसर संचालित करने के लिए प्रेरित किया जाएगा।

विश्वविद्यालयों-महाविद्यालयों में शिक्षण के लिए प्रारंभिक प्रशिक्षण की कोई पुख्ता व्यवस्था नहीं दिखती है, जिसकी सख्त आवश्यकता थी। जब बच्चों को पढ़ाने के लिए ऐसी अपेक्षा है तो उच्च शिक्षण के क्षेत्र में क्यों नहीं? हालाँकि स्कूली शिक्षण के लिए बी.एड. को नया आयाम प्रदान किया गया है। बारहवीं के बाद यह चार साला पाठ्यक्रम के तौर पर लागू होगा। स्नातक पास दो वर्ष में और परास्नातक एक वर्ष में बी.एड. कर सकेंगे। 2030 तक शिक्षण के लिए यह न्यूनतम योग्यता होगी, इसके बिना कोई पढ़ा नहीं पाएगा। मातृभाषा को वरीयता देते हुए संस्कृत के साथ कम से कम एक भारतीय भाषा का बुनियादी ज्ञान और अंग्रेजी के साथ एक विदेशी भाषा भी सीखने के लिए अनुप्रेरित करना होगा। माध्यमिक स्तर पर विदेशी भाषाओं कोरियन, जर्मन, फ्रेंच, जापानी, रूसी आदि की ऐच्छिक पढ़ाई को प्रोत्साहित करना समय की माँग है, पर तात्कालिक कलह की वजह से चीनी का उल्लेख न करके अपने हितों की अवहेलना की गई है, जिसे बोलने-समझने वालों की विश्व भर में अच्छी-खासी संख्या है। भारत की साढ़े तीन हजार किलोमीटर की सीमा चीन से जुड़ती है, निरंतर अपेक्षित-अनपेक्षित संवाद चीनी पक्ष से करना पड़ता है। चीन से शैक्षणिक-व्यापारिक संबंध भी गहरा और पुराना है। इस बार जब सीमा विवाद हुआ तो आननफानन में आईटीबीपी के जवानों को चीनी सिखाने के लिए सरकार को बाध्य होना पड़ा, ताकि चीनियों से हर मोर्चे पर सशक्त संवाद हो सके। लेकिन भोज के समय कोहड़ा रोपने से बेहतर है कि योजनाबद्ध तरीके से आवश्यकताओं को चिह्नित कर दीर्घकालिक हितों के लिए कार्यक्रम बनाए जाएँ। शिक्षा नीति में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की अव्यवस्था पर बेबाक स्वीकारोक्ति साहसिक है। आखिर समस्याओं को चिह्नित किए बिना, चुनौतियों का आकलन किए बिना उनका निदान का लक्ष्य कैसे निर्धारित होता। प्रस्तावना में भारत की ज्ञान परंपरा को यथासंभव समेटने और विश्व के नव्यतम आगतों को आत्मसात करने का प्रयत्न कुछ नया तो लगता है, पर कार्यान्वयन की ईमानदारी इसकी सार्थकता तय करेगी।